संपादकीय

बेग़मपुरा

पराधीनता पाप है जान लियो रे मीत!

शीलबोधि
कार्यकारी संपादक
मो. 9971566918
sheelbodhi@gmail.com

फरवरी की 1 तारीख और पूर्णिमा के दिन हमने एक ऐसे व्यक्ति की जयंती मनाई जिसने पराधीनता को पाप कहकर संबोधित किया, जो अपनी वाणी से तत्कालीन समाज को सचेत कर रहा था कि जो व्यक्ति पराधीनता है, उससे कोई प्रीत नहीं करता। वह कह रहा था कि पराधीन व्यक्ति का कोई दीन नहीं होता, और जिसका दीन नहीं होता, उसे सभी हीन समझते हैं! उस महानतम व्यक्ति को संत रैदास या रविदास कहकर स्मरण किया जाता है, लेकिन जिसने अनेक बार अपनी पहचान जन रैदास के रूप में लोगों के सामने रखी है। जन रैदास की वाणियों में जन-सरोकार की गहनता व्याप्त है। देश में करोड़ों लोगों का समूह, आज भी मौजूद है, जो स्वयं को रैदासी कहकर अपना परिचय देता है, आज भी करोड़ों लोग ऐसे हैं, जो 'जन रैदास' से प्रभावित हैं, भले ही वे 'जन रैदास' से परिचित नहीं हैं, वे परिचित हैं, 'संत रैदास' से। जन रैदास का चिंतन रोजगार की स्वयत्ता पर टिका है। संत रैदास 'ऐसा चाहूं राज मैं' कहते हुए, वे उस इंसान की आवाज बन रहे थे, जो कमेरा होते हुए भी भूखा था, और 'छोट-बड़े सम बसै' कहकर धन के अंबारों को अपनी उंगली से इंगित कर रहे थे कि इन्हीं बड़े ध न अंबारों की वजह से इंसान भूखा मर रहा है। वे सत्ता से खुले आम नाखुशी जता रहे थे। वे कह रहे थे कि मैं तभी प्रसन्न हो सकता हूं जब छोटे और बड़े लोगों को समान स्तर पर लाया जाएगा।

जन रैदास जैसे 'बेग़मपुरा' शहर बसाने का प्रस्ताव पेश करते हुए नजर आते हैं, उसी तरह से डॉ. आंबेडकर 'राजकीय समाजवाद' का प्रस्ताव पेश करते हैं! जिन कठिनाई का सामना जन रैदास अपने समय में कर रहे थे, वैसी ही कठिनाई डॉ. आंबेडकर के सामने भी थी, आंबेडकर कहते हैं—'यह सच है कि जहां राज्य हस्तक्षेप से विमुख रहता है, वहां जो शेष रहता है, वह है स्वाधीनता, किंतु बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती है। एक और प्रश्न का उत्तर दिया जाना शेष है। यह स्वाधीनता किसे और किसके लिए? प्रकटत: यह स्वाध ीनता जमींदारों को लगान बढ़ाने और मजदूरी घटाने की स्वाधीनता है।' (राज्य व अल्पसंख्यक, खंड 2, पृ.195) अफसोस वैसी ही कठिनाई भारत की स्वाधीनता के 75 वर्ष बाद कामगारों के सामने है। निजीकरण ने कामगारों के सामने वह स्थिति पैदा कर दी है कि

दुख सहने के बावजूद दुख की गवाही नहीं दे सकते।

राज्य का कल्याणकारी स्वरूप खतरे में है। राज्य की ओर से निजी क्षेत्रों का विस्तार किया जा रहा है। सार्वजनिक क्षेत्रों को सीमित करने का मतलब है कि जनता द्वारा चुनी गई सरकार के प्रभाव को सीमित करना। चुनी हुई सरकार यदि अपने प्रभाव से जनता को शोषण से नहीं बचा पाती है, या नागरिकों के लिए दुखद सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक परिस्थिति पैदा करती है, तो उसे बदला जा सकता है। लोकतंत्र में हर नई सरकार अपनी नीतियों से नागरिकों को शोषणमुक्त परिवेश दे सकती है। सरकार का रवैया देखकर ऐसा लग रहा है कि जैसे उसे निजीकरण का विस्तार करने के लिए ही चुना गया है। सरकार यदि देश के स्वामित्व को बनियों के हाथ में सौंपती है, तब बनिये को कैसे रोका जा सकता है कि देश की धन-दौलत को विदेशों में हस्तातंरित न करे, हमने देखा है कि बनिया लगातार देश की नागरिकता छोड़कर विदेशी नागरिकता ले रहा है, सरकार के सहयोग से जो देश की संपत्ति उसके हाथ में है, उसे लेकर विदेश में बस रहा है।

अब सवाल यह उठता है कि सरकार देश का आर्थिक-बल उन व्यापारियों को क्यों हस्तातंरित कर रहीं है, जो स्वयंहित में देश की नागरिकता छोड़ने के लिए तैयार बैठे हैं और जो सार्वजनिक हित की तिलभर चिंता नहीं करते हैं। निजी क्षेत्र के फैलाव से आजीवका के लिए देश के नागरिक पूंजीपतियों की अधीनता में आ गये हैं। इस संबंध में सन् 1947 में डॉ. आंबेडकर कहते हैं–'अपनी आजीविका पाने के लिए कितनों को अपने संवैधानिक अधिकार छोड़ने पडेंगे? कितने लोगों को प्राइवेट नियोजकों से शासित होना पड़ेगा।' (राज्य व अल्पसंख्यक, खंड 2, पृ. 194) भारत के संविधान के अनुसार तो यह निश्चित है कि नागरिकों पर शासन केवल वही लोग कर सकते हैं। जिन्हें उन्होंने अपने ऊपर शासन करने के लिए चुना है। यदि निजी क्षेत्र बढ़ता है तो निजी क्षेत्र जिन पूंजीपतियों के नियंत्रण में है, वे नागरिकों पर शासन करने लगेंगे, जबकि नागरिकों ने अपने ऊपर शासन करने के लिए पूंजीपतियों को नहीं चुना। सार्वजनिक क्षेत्रों में जो काम होता आ रहा था और होता है, उसमें कार्य के घंटे, वेतन, छुट्टी सभी नियमों के अधीन है। साथ ही शोषण करने वाला कितना बड़ा अधिकारी हो, उसके शोषण से बचाव करने के अवसर व नियमों की व्यवस्था है।

सरकार के रूप में जो शासक है, वह सार्वजनिक क्षेत्रों को धीरे-धीरे समेटते हुए निजी क्षेत्र को फैला रहा है। एक निश्चित गति से यह काम हो रहा है। निजी क्षेत्र में रोजगार का स्वरूप संविदा आधारित है, जो स्थायी रोजगार की व्यवस्था नहीं है, बल्कि सीमित अवधि के लिए रोजगार है। निजी क्षेत्र नागरिकों के लिए अनिश्चित रोजगार की जो व्यवस्था है, उसमें नौकरी के चले जाने के अंदेशों से भयभीत 'आज' और 'कल' है। उस नौकरी पर बने रहना नियम या कानून के तहत व्यवस्थित नहीं है, मालिक की इच्छा पर टिका है। सरकार उद्योगों को ज्यादा से ज्यादा अपने नियंत्रण से मुक्त करती जा रही है, इसका मतलब डॉ. आंबेडकर के अनुसार–'जिसे राज्य के नियंत्रण से मुक्ति कहते हैं, वहीं प्राइवेट नियोजक के एकाधिकार का दूसरा नाम है।' (राज्य व अल्पसंख्यक, खंड 2, पृ. 195)

सार्वजनिक क्षेत्र में नागरिकों के लिए धर्म, जाति, भाषा या क्षेत्र के आधार पर भेदभाव मुक्त समान अवसर देने के लिए न्यायसंगत व्यवस्था की जाती है। निजी क्षेत्र में नागरिकों को भेदभाव से बचाने के लिए क्या किया जाएगा। डॉ. आंबेडकर कहते हैं–'भारत जैसे देश में जहां अधिसंख्यक या लोग सांप्रदायिक वृत्ति के हैं, यह आशा करना कठिन है कि जो लोग सत्ता में होंगे, वे उन लोगों के साथ समान व्यवहार करेंगे जो उनके संप्रदाय के नहीं है।' (राज्य व अल्पसंख्यक, खंड 2, पृ. 191) भारत में 15 फीसदी द्विज-दल के अल्पजन सत्ता में हैं, और 85 फीसदी बहुसंख्यक या बहुजन सत्ता से बाहर हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में हम आपत्ति कर सकते हैं, लेकिन निजी क्षेत्र में सांप्रदायिक वृत्ति के लोगों से समान नागरिक व्यवहार और समान अवसर कैसे पा सकेंगे। संवैधानिक बाध्यता के बावजूद कुछेक लोग अपने सरकारी पदों पर रहकर भी दुस्साहसिक तरीके से अपनी सांप्रदायिक वृत्ति को उजागर करते हैं, हालिया उदाहरण है–बरेली के सिटी मैजिस्ट्रेट अलंकार अग्निहोत्री ने यूजीसी के नए कानून और प्रयागराज के माघ मेले में शंकराचार्य स्वामी अविमुक्तेश्वरानंद के साथ हुई कथित बदसलूकी के कारण अपने पद से इस्तीफा दे दिया (नभाटा 27012026/1)। सरकार की तरफ से ही कहा गया है कि विश्वविद्यालयों में भेदभाव 110 फीसदी बढ़ गया है। इस तथ्य के प्रति सिटी मैजिस्ट्रेट की कोई सहानुभूति नहीं है, ऐसे में शंकराचार्य के साथ हुए व्यवहार को भी उन्होंने इस्तीफे का आधार बनाया है, इससे उनकी सांप्रदायिक वृत्ति साफ दिखाई देती है। ऐसा व्यक्ति न्याय की कुर्सी

पर बैठकर कैसे न्याय करता होगा। यह अकेला मामला नहीं, खैरलांजी और भंवरी देवी के केस में भी ऐसी ही धार्मिक वृत्तियां शामिल थी। निजी क्षेत्र में रोजगार पर नागरिक की निर्भरता को, जितना ज्यादा, पूंजीपतियों के हवाले किया जाएगा, उतना ही मौलिक अधिकार अपना औचित्य खो देंगे। निजी क्षेत्र में कार्यरत निम्न स्तर के कर्मचारियों का जिस भांति आर्थिक, शारीरिक व मानसिक शोषण हो रहा है, उसकी वह गवाही भी, इस डर से नहीं दे सकता है, इससे उसका रोजगार छीन लिया जाएगा। आजीविका की असुरक्षा उसे अपने मौलिक अधिकार छोड़ने के लिए मजबूर कर रही है। निजी क्षेत्र में संविदा आधारित आजीविका हासिल करने के लिए चालीस से पचास हजार रुपये की रिश्वत या जमानत राशि दी जाती है, जो वापस नहीं मिलती। हर माह की तनख्वाह से 20-28 फीसदी बिल पास कराने की रिश्वत के रूप में वापस ले लिया जाता है, जिसका कोई सबूत नहीं बनता है। जिसकी जेब काटी जाती है, वह 'हां' भी नहीं भर सकता क्योंकि इससे उसकी आजीविका छिन सकती है। निजी क्षेत्र, वह क्षेत्र है, जहां मौलिक अधिकार स्वत: निरस्त हो जाते हैं, इसके लिए किसी घोषणा की जरूरत नहीं होती। निजीकरण, सीधे तौर पर 85 फीसदी जनता को, द्विज-दल की अनैतिक व अघोषित सत्ता, के अधीन करता है।

सन् 1947 में डॉ. आंबेडकर कह रहे थे, जिसपर आज विशेष गौर करने की जरूरत है–'इस बात को ध्यान में रखते हुए कि व्यस्क मताधिकार के अंतर्गत भी विधान-मंडलों पर एवं सरकारों पर अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली लोगों का नियंत्रण रहता है, मध्यक्षेप करने के लिए विधान मंडल से अपील करना कमजोर वर्ग की स्वाधीनता हनन के विरुद्ध एक अत्यंत प्रमुख अपेक्षी सुरक्षा उपाय है।' आज के संदर्भ में विधान मंडल या लोकसभा में अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली लोगों में अडानी या अंबानी जैसे लोगों को माना जा रहा है, जो शायद सरकार से शक्तिशाली हैं, से कमजोर की सुरक्षा के लिए मध्यक्षेप मजबूत विपक्ष है, जिसके प्रबल हस्ताक्षेप से भारत-अमेरिका ट्रेड एग्रीमेंट में अमेरिका की सख्ती काफी हद तक शिथिलता में ढली। कई देशों में जनता के विरोध ने अमेरिका के सख्त रवैये को नरम किया, जैसे–ग्रीनलैंड, कनाडा, फ्रांस आदि। अभी भी वह वक्त नहीं गुजरा है, जिसमें देश को केवल सरकार के भरोसे छोड़ा जा सके। पिछले चुनावों में देश की जनता ने जो मजबूत प्रतिपक्ष खड़ा किया, वह आज देश के काम आया। यह गौर करने लायक बात है कि पिछले चुनावों में प्रमुख विपक्षी पार्टी ने भी द्विज-दल को एक तरफ रखकर 85 फीसदी भारतीय जनता के महत्त्व को स्वीकार किया। उनके मुद्दों को राष्ट्रीय राजनीति में जगह दी। जिस वोट के अधिकार से जनता ने देश को मजबूत विपक्ष दिया है, वही वोट को अधिकार, अल्पजन शक्तिशाली लोगों की, पराधीनता से, बहुसंख्यक या बहुजन को बचाने का संवैधानिक उपचार है। विपक्ष इसका ध्यान रखे।

जिस पार्टी की छवि पूंजीपतियों की पार्टी के रूप में है, गौर है कि उसका रुझान सांप्रदायिक वृत्ति का है, वह जनता के वोट के अधिकार का विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआइआर) कर रही है। इसका परिणाम क्या आ रहा है, नवभारत टाइम्स ने 20 जनवरी 2026 को लिखता है–'दूसरे चरण में जारी 11 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों की ड्रॉफ्ट लिस्ट में कुल मिलाकर 3 करोड़ 69 लाख लोगों के नाम कटे हैं। तार्किक विसंगति (logical discrepancies) की श्रेणी में शामिल लोग इससे अलग हैं।' जिस वोट के अधिकार को हमारे पुर्खों ने बड़े बलिदानों से हासिल किया है, वह वोट का अधिकार द्विज-दल द्वारा यूं ही छीन लिया जा रहा है। ऐसे में जनता के वोट के अधिकार की रक्षा यदि न्यायालय नहीं कर रहा है, तो खून की आखिरी बूंद देकर भी अपने वोट के अधिकार की रक्षा करना जनता के हिस्से का काम है। नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 2003 को आधार बनाकर केंद्र सरकार एसआईआर करा रही है। जिन 3 करोड 69 लाख लोगों के नाम काटे गए हैं, उनका जनसांख्यिकी विवरण भी सामने आना चाहिए, जो ऐसा हो, जिससे; सामान्य वर्ग, अल्पसंख्यक, एससी, एसटी, ओबीसी और अल्पसंख्यकों के मतदाताओं की संख्या और अनुपात का पता चलता हो।

आजादी के बाद से राजनैतिक सत्ता पर द्विज-दल का कब्जा रहा है, लेकिन पिछले कई दशकों से बहुजनों (एससी, एसटी व ओबीसी) का राजनीतिक हस्तक्षेप बड़ा है, जिससे शक्ति के स्रोतों पर द्विजों की पकड़ ढ़ीली हुई है, द्विज-दल की पकड़ पुन: मजबूत करने के लिए उन लोगों से वोट का अधिकार छीना जा रहा है, जिनकी वजह से द्विज-दल की राजनीतिक शक्ति उनके हाथ से सरकी थी। विशेष गहन पुनरीक्षण से देश की 85 फीसदी जनता की वोट की शक्ति को कमतर किया जा रहा है।

राजनैतिक रूप से भी हम देख रहे

हैं कि द्विज-दल द्वारा संवैधानिक दायित्व व सीमाओं की नैतिकता को तार-तार किया जा रहा है। डॉ. आंबेडकर ने कहा-'संवैधानिक नैतिकता कोई स्वाभाविक भावना नहीं है, इसे विकसित करना पड़ता है।' द्विज-दल संवैधानिक नैतिकता को अपने-आप में आज तक विकसित नहीं कर पाया। केंद्र शक्तिशाली है, इसका मतलब यह नहीं है कि राज्य के लिए संविधान की व्यवस्था का पालन नहीं किया जाएगा। हाल-फिलहाल में केरल के राज्यपाल राजेंद्र विश्वनाथ आलेंकर ने पिनराई सरकार की कैबिनेट से स्वीकृत अभिीाषण को नहीं पढ़ा। इससे पहले तमिलनाडु के राज्यपाल रवींद्र नारायण रवि ने विधानसभा के सालाना सत्र में परंपरागत उद्घाटन भाषण नहीं पढ़ा। 21 जनवरी 2026 को नवभारत टाइम्स लिखता है-'संविधान के मुताबिक, राज्यपाल कैबिनेट की सलाह पर काम करते हैं। वह अपनी निजी राय या असहमति को अभिभाषण के जरिये व्यक्त नहीं कर सकते।' जो लोग शासन के पदों पर संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ लेकर विराजमान हुए, उनका काम ऐसा लगता है कि संवैधानिक मूल्य को लागू करने से अलग उनके इरादे हैं। जिस तरह से पिछले दिनों केंद्र में सत्तारूढ पार्टी ने राज्य में सरकारें गिराई हैं, उससे ऐसा आभास होने लगा है कि विकल्पविहीन राजनीति की पृष्टभूमि तैयार की जा रही है। यदि दूसरी पार्टियों के वजूद को खत्म या निरस्त कर दिया जाएगा तो चुनाव करने के लिए जिस विकल्प की जरूरत होती है, वह खत्म हो जाएगा। सत्तारूढ लोगों के दबंगपन में धर्म की धमक और धन की खनक अगर समाहित है, तब लोकतांत्रिक मूल्यों को चोट पहुंचाना आसान होगा।

भारत एक बड़ा देश है, यहां पर नागरिकों के बीच सांप्रदायिक व जातीय टकराव की स्थिति केंद्रीय-सत्ता पर आरूढ पार्टी के साथ गैर सरकारी सहयोजित संस्थाओं द्वारा ही उत्पन्न करना और पर्दे के पीछे से संचालन सत्ता में बैठे द्विज-दल के लोगों द्वारा करना, बेहद चिंताजनक स्थिति है। ऐसे में नागरिकों के बीच फैली टकराव की स्थिति का फायदा चीन जैसा देश, जो हमसे हर तरह से कई गुणा शक्तिशाली है, अगर उठाता है, तो यह मानना कि कोई दूसरा देश हमारी मदद करेगा, गलत साबित होगा। अगर कोई मदद मिलेगी भी तो वह किस्तों में होगी और कमजोर साबित होगी। पिछले दिनों कई विकसित देशों पर हुई, शक्तिशाली देशों की कार्यवाही में, हमने यह देख लिया है। नवभारत टाइम्स, दिल्ली की पहले पेज पर 1 सितंबर 2025 को व्हाइट हाउस, अमेरिका के ट्रेड एडवाइजर ने जो कहा, वह छपा, 'ब्राह्मण भारतीय लोगों की कीमत पर मुनाफा कमा रहे हैं।' (Brahmins profiteering off Indian People)। शक्तिशाली देश अपने हस्तक्षेप की भूमिका बनाकर बैठे हैं। अमेरिका अपने सुरक्षा कारणों का बहाना बनाकर ग्रीनलैंड को डेनमार्क के कब्जे से हटाकर अपने कब्जे में लेने की लगातार कोशिश कर रहा है। यूक्रेन के पूर्वी हिस्से यानी डोनबास में स्थित डोनेटस्क और लुहान्स्क में रूसी भाषी लोगों का यूक्रेन सेना द्वारा नरसंहार बताया जा रहा है। यूरोप के कई देश इसे बहाना मान रहे हैं। ऐसे बहाने वर्तमान भारत में सैंकडों की संख्या में मिल जायेंगे, जिसकी ठोस और पुरानी जमीन भी होगी। भारत की सामरिक शक्ति कुछ चुनिंदा सामरिक साजों सामान पर टिकी है, जो यूरोप या अमेरिका जैसे विकसित देश से आयातित है।

असहनीयता की हद तक भारत के लिए अमेरिका का रवैया धमकी भरा रहा है और भारत छप्पन इंच का सीना लिये सुनता रहा। अमेरिका हमारे देश भारत को सख्त आदेश-निर्देश देता नजर आता है। अब बताइये हम अपने देश भारत को सम्प्रभुता सम्पन्न कैसे कह सकते हैं? डेनमार्क हमारे मुकाबले बहुत छोटा देश है, डेनमार्क के प्रधान मंत्री मेटे फ्रेडरिक्सन ने साफ शब्दों में कहा कि संप्रभुता की कीमत पर हम अमेरिका से संबंध नहीं बना सकते। कनाडा के प्रधान मंत्री मार्क कार्नी, ब्राजील के राष्ट्रपति लुइस इनासियो लूला दा सिल्वा ने तीव्र व त्वरित प्रतिक्रिया दी, फ्रांस के राष्ट्रपति इमैनुएल मैक्रो ने तो अपनी शक्ति का प्रदर्शन ग्रीनलैंड में अपने सैनिक भेजकर कर भी दिया। हम आशा कर रहे थे भारत के प्रधान मंत्री भी कुछ कहेंगे, लेकिन उनकी प्रतिक्रिया कानों तक नहीं पहुंची। अमेरिका हमें कह रहा था कि भारत अपनी तेल खरीद रूस और ईराक से नहीं करेगा, वेनेजुएला से तेल खरीदेगा। हमारे अधिकारी इस पर नजर रखेंगे। वही खड़े भारतीय राजनयिक इसका साफ शब्दों में जवाब नहीं देते।

अमेरिका नियंत्रण की कार्यवाहियों के बीच भारत में विपक्ष के प्रबल विरोध का प्रभाव नजर आता है कि अमेरिकी वक्तव्य में 'तेल खरीद का वादा' को बदलकर 'तेल खरीद का इरादा' कर देता है, लेकिन भारतीय समझते हैं कि इससे अमेरिका का किसी हद तक इरादा नहीं बदला है। भारत केवल तेल पर ही नहीं, ट्रंप के व्यापार सलाहकार पीटर नवारो की बात पर गौर करें तो एआई पर भी भारत को धमकाते हुए नजर आ रहे हैं कि भारतीयों

के एआई का खर्च हम क्यों उठाये जैसे चैट-जीटीपी। अगर हम झुके या प्रभाव में आए तो हमारी पराधीनता का स्तर खतरनाक होगा, रैदास के शब्दों में पराधीनता का पाप हो रहा होगा।

रूस हमें 20 फीसदी सस्ता तेल तेल दे रहा है, हम महंगा तेल लेने के लिए मजबूर हैं, जबकि रूस के भारी तेल को साफ करने की रिफाइडरी हमारे पास हैं, पर अमेरिकी तेल हल्का है और उसके कच्चे तेल के लिए हमें रिफाइडरी लगानी पड़ेगी। रूस हमारा वह साथी है, जो हर मुश्किल में हमारे साथ खड़ा है। अमेरिका कई बार भारत पर सैन्य कार्यवाही के लिए आगे बढ़ा था, रूस के बीच में आ जाने के कारण वह वापस लौटा था। केवल तत्कालीन लाभ के लिए रूस का दामन छोड़ना अच्छी बात नहीं होगी। रूस विश्व में महाशक्ति है और पूंजीवादी नहीं है, अमेरिका पूंजीवादी शक्ति है, इस तरह से अमेरिका की ही नहीं बल्कि विश्वभर की पूंजीवादी शक्तियां रूस को महाशक्ति के विकल्प के रूप में खत्म करना चाहती होगी, इसलिए हमें अमेरिका के पक्ष में नहीं बल्कि रूस के पक्ष में खड़ा होना जरूरी लग रहा है, जो भरोसेमंद है।

डोनाल्ड ट्रंप के बुरे व्यवहार का शिकार दुनिया के विकासशील देश भी हो रहे हैं। ट्रंप की भाषा और व्यवहार उन्हें नागवार गुजर रहा है। ट्रंप के नेतृत्व में अमेरिका का व्यवहार भरोसे का नहीं रहा, वह यूरोपियन यूनियन के 8 देशों पर टैरिफ नहीं बढ़ाने का वायदा करने के बावजूद 10 फीसदी टैरिफ लगा देता है। यूरोपियन यूनियन इस बात को समझ जाती है, वह भारत के साथ लंबी अवधि का ट्रेड डील करती है। इससे भारत को मजबूती मिलती है। भारत अमेरिका के साथ स्थाई नहीं अंतरिम डील करता है, यह सुखद है, लेकिन इसमें अमेरिका हर महीने बड़े बदलाव कर सकता है, शांति के साथ व्यापार करने की परिस्थिति का संतोषजनक परिणाम अभी नहीं है।

सरकार को अब आगे अपनी व्यापार नीति को ऐसा तैयार करने की जरूरत है कि वह विश्व के विभिन्न देशों के बीच फैली हुई हो। जिससे एक देश के नकारात्मक रवैया से अप्रभावित रहा जा सके।

केवल इतना भर काफी नहीं है। सत्तारूढ पार्टी को हिंदी, हिंदू, हिंदूस्तान की रट के साथ हिंदुत्व के स्थान पर भारतीय-मन बना लेना चाहिए, अन्यथा आंतरिक अशांति का नतीजा किसी हाल ठीक नहीं माना जा सकता है।

कोई भी एक विचारधारा की पार्टी जब कहती है कि 'राष्ट्र सर्वोपरि' है तो इसका मतलब 'भारत देश' नहीं होता है, बल्कि 'हिंदू राष्ट्र' होता है। आम भारतीय को इस भेद को समझना चाहिए। भारत इतना ज्यादा विभिन्नता लिए हुए है कि किसी एक विचारधारा के दबाव में इसकी पहचान भारतीयता के अलावा कुछ और रखने की कोशिश की जाती है, तो गंभीर अशांति की स्थिति पैदा हो जाएगी। ऐसा हो सकता है, जिसका पूर्व अनुमान डॉ. आंबेडकर ने लगा लिया था। देश से ज्यादा विचारधारा को प्रिय समझने वाले भी कभी यदि इस देश की सत्ता की बागडोर संभालेंगे तब के गंभीर परिणामों पर बोलते हुए, उन्होंने संविधान सभा में कहा था, '26 जनवरी 1950 को भारत एक स्वतंत्र देश बन गया। उसकी स्वतंत्रता का क्या होगा? क्या वह अपनी स्वतंत्रता बरकरार रख पाएगा या उसे फिर से खो देगा? यही पहला विचार है जो मेरे मन में आता है। ऐसा नहीं है कि भारत कभी स्वतंत्र देश नहीं था। बात यह है कि उसने एक बार अपनी स्वतंत्रता खो दी थी। क्या वह इसे दूसरी बार खो देगा? यही विचार मुझे भविष्य के लिए सबसे ज्यादा चिंतित करता है। मुझे सबसे ज्यादा परेशान करने वाली बात यह है कि भारत ने न केवल एक बार अपनी स्वतंत्रता खोई है, बल्कि उसने इसे अपने ही कुछ लोगों के विश्वासघात और धोखे के कारण खोया है। क्या इतिहास खुद को दोहराएगा? यही विचार मुझे चिंता से भर देता है। यह चिंता इस तथ्य से और भी गहरी हो जाती है कि जाति और धर्म जैसे हमारे पुराने दुश्मनों के अलावा, हमारे सामने कई राजनीतिक दल होंगे जिनके राजनीतिक विचार विविध और एक-दूसरे के विरोधी होंगे। क्या भारतीय देश को अपने धर्म से ऊपर रखेंगे या धर्म को देश से ऊपर रखेंगे? मुझे नहीं पता। लेकिन यह निश्चित है कि यदि दल राष्ट्र से ऊपर विचारधारा को रखते हैं, तो हमारी स्वतंत्रता एक बार फिर खतरे में पड़ जाएगी और शायद हमेशा के लिए खो जाएगी। इस स्थिति से हम सभी को दृढ़तापूर्वक बचाव करना होगा। हमें अपनी खून की आखिरी बूंद तक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने का दृढ़ संकल्प रखना होगा।'

अब यदि हम महसूस करते हैं कि ऐसी परिस्थिति आ गई है या आ सकती है, तो हमें अपने देश की स्वतंत्रता को बचाने के लिए उतनी गाढी त्याग की भावना की जरूरत होगी, जितनी स्वतंत्रता हासिल करते समय थी। जरूरी नहीं हमारी आजादी को देश से बाहर की कोई शक्ति खत्म करेगी, वह शक्ति देश के अंदर भी हो सकती है, जो राणा प्रताप के खिलाफ अकबर का बल बनकर खड़ी थी। बाकी आपके सोचने के लिए छोड़ता हूं और अभी यही कलम को विराम देता हूं।❑